

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2021; 3(1): 327- 330
Received: 18-02-2021
Accepted: 26-03-2021

डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर स्माजशास्त्र
विभाग आर0बी0डी0 महिला
महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर
प्रदेश, भारत

मनु द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम पद्धति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का विध्वंसीकरण

डॉ. मंजु चौधरी

सारांश

आज के इस आधुनिक और व्यावहारिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर एक दिन यह अवश्य अनुभव करता है कि हमारे सामाजिक जीवन में नैतिकता की बहुत ही कमी आ गयी है। नैतिकता कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो सीधे-सीधे हर व्यक्ति को दिया जा सकता है। वह ऐसा पदार्थ है जो सभी व्यवहारों में ओत-प्रोत होकर परोक्ष ढंग से प्राप्त हो सकता है। मनु ने गृहाश्रमी के लिए जिन पांच महायज्ञों का विधान किया था उनमें नैतिकता ओत-प्रोत थी जिसके कारण मनुष्य के व्यवहार अपने कुटुम्ब, समाज तथा राज्य में भी प्रायः नैतिक बने रहते थे। मनुस्मृति अपने शुद्ध रूप में वास्तव में एक अर्थशास्त्र है जिसके अनुसार व्यवहार होने पर अधर्म का पनपना कठिन हो जाता है। यह अधर्म ही अनैतिकता है। किन्तु मनुस्मृति ऐसा धर्म ग्रन्थ नहीं है जो किसी सम्प्रदाय या पन्थ को जन्म देने वाला हो। वह केवल सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी कर्तव्यों का विधान करने वाला ग्रन्थ है जिसकी आवश्यकता सदैव रहती है। अतः यह विचारणीय हो सकता है कि मनु ने जो पांच महायज्ञ विहित किये थे वे आज भी प्रासांगिक हैं और यदि है तो आज के पंथनिरपेक्ष राज्य को अपने संविधान को अथवा असंख्यात विधानों में उन महायज्ञों के सार को समाविष्ट करना चाहिए अथवा नहीं।

कुटुम्बशब्द: वर्णाश्रम पद्धति, सामाजिक व्यवस्था, विध्वंसीकरण

प्रस्तावना

मनुष्य की जीवन शैली तथा इतर प्राणियों की जीवन शैली में बहुत भिन्नता होती है। जहाँ इतर जीवों का जीवन प्रकृति प्रेरित पद्धति के अनुसार चलता है वहाँ मानवी जीवों का जीवन बहुत थोड़ी सीमा तक ही प्रकृति प्रेरित होता है और बहुत अधिक सीमा तक बुद्धि प्रेरित होता है क्योंकि ईश्वर ने बुद्धि नामक वरदान केवल मनुष्य को ही प्रदान किया है। दूसरे जीवों का आचरण कई बार बुद्धिमत्ता पूर्ण दिखता है किन्तु वास्तव में वह प्रकृति प्रेरित ही होता है। यदि ऐसा न होता तो पशुओं के जगत में मनुष्यों की भांति एक संगठित संस्कृति का विकास हो गया होता। उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, लाभ-हानि, षोषण-पोषण आदि उदात्त जीवन मानक केवल मनुष्यों के जीवन में बड़ी भूमिका का निर्वाह करते हैं। व्यवहार में ये सारे पक्ष बुद्धि से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि भूगोल में जहां कहीं मनुष्यों का निवास है स्थानीय प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुरूप वे अपना जीवन ढाल लेते हैं और लाभ हानि का आकलन करके सदैव उस जीवन शैली में अच्छे या बुरे परिवर्तन करते रहते हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य ऐसे ही जीवन से बनी उस सामाजिक व्यवस्था से है जो भारतीयों की मान्यता के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा अंतः प्रेरित ज्ञान, जिसे वेद कहा जाता है, की धुरी पर मनुष्य ने स्वयं बनायी थी। निःसन्देह इस व्यवस्था में प्राकृतिक परिस्थितियों ने भी वे परिधियां अबधारित की होंगी जिनकी सीमा में रहते हुए सामाजिक व्यवस्था बनी थी। वेद ज्ञान के आधार पर स्थापित तथा बहुत लम्बे समय तक चली इस सामाजिक व्यवस्था को वैदिक समाज व्यवस्था कहा जाता है। मानव जाति के पास वेद से पुराना कोई भी साहित्य नहीं है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि वेद पर आधारित यह सामाजिक व्यवस्था सर्वप्राचीन व्यवस्था थी। वेद को मात्र धर्म की पुस्तक कहना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि उसमें हर प्रकार का ज्ञान सन्निहित है। यह व्यवहारिक सुविधा के लिए परवर्ती काल में जब आवश्यकता अनुभव हुई तब कुछ मनीषियों ने इसी ज्ञानाकोप से कुछ मणियां तथा मौक्तिक चुने जिनमें समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के कर्तव्यों तथा अकर्तव्यों को समझाया गया। इन ऋषियों ने अपने युग की भाशा में उन मणिमुक्ता रूप विचारों को व्याख्यात किया क्योंकि वह व्याख्या वेदों के ज्ञान की स्मृति पर अवलम्बित थी, उनकी रचना स्मृति कहलायी। स्मृति की एक मात्र प्रतिज्ञा यह होती है कि वह श्रुति अर्थात् वेद का ही अनुसरण करेगी यदि विचलन है तो उसे वास्तव में स्मृति नहीं कहा जा सकता। मनु की रचना मनुस्मृति सर्वप्राचीन स्मृति है जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में स्थान-स्थान में मिलता है। यद्यपि स्मृति के नाम से बहुत से ग्रन्थ आज चलते हैं किन्तु वे श्रुति या अनुसरण करने वाली स्मृतियां नहीं हैं। उनमें तत्समय की आवश्यकता के अनुरूप नियम बना दिये गये हैं जो श्रुति से प्रमाणित नहीं हो सकते हैं। सच तो यह है कि आज जो ग्रन्थ मनुस्मृति के नाम से उपलब्ध हैं वह मूल मनुस्मृति नहीं हैं।

Corresponding Author:
डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर स्माजशास्त्र
विभाग आर0बी0डी0 महिला
महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर
प्रदेश, भारत

उसमें मूल की कुछ बातें हैं किन्तु बहुत सी वाह्य सामग्री भी सम्मिलित कर ली गयी है। ये स्मृति ग्रन्थ धर्म ग्रन्थ कहलाते हैं। इनमें बताया गया है कि वेद में विहित मानवीय कर्म ही धर्म हैं। और निषिद्ध मानवीय कर्म ही अधर्म हैं। धर्म की आधारषिला वेद है, धर्म जिज्ञासुओं के लिए श्रुति ही एक मात्र प्रमाण है? मनुस्मृति इतनी प्राचीन स्मृति है कि इसका उल्लेख यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता में है जिसका उपाषय यह होता है कि स्मृति संहिता से पूर्व रची जा चुकी थी? संहिताओं की सर्वप्रथम व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ताण्डव ब्राह्मण में मनु के विचारों की चर्चा है।³ निरुक्त के रचनाकार भास्काचार्य ने स्वायम्भुव मनु के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम को स्वीकार किया है।⁴ उन्होंने मनु के इस नियम को सृष्टि के आरम्भ से माना है। परवर्ती स्मृतिकार बृहस्पति ने तो यह तक घोषित कर दिया है कि वेद के अनुसार के कारण स्मृतिकार मनु ही प्रधान स्मृतिकार हैं और जो स्मृति मनु विचारों के विपरीत है वह वास्तव में स्मृति नहीं है।⁵

अब यदि आज उपलब्ध मनुस्मृति में ऐसी विशय स्मृति प्रचुरता से मिलती है जो बेदानुकूल तो दूर की बात है सामान्य बुद्धि भी अनुकूल नहीं है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी विषयवस्तु उस मनुस्मृति की नहीं हो सकती जिसका उल्लेख उपर्युक्त विभिन्न ग्रन्थों में किया गया है। इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मूल मनुस्मृति को किसी बाध्यकारी परिस्थिति के कारण भारी फेरबदल का सामना करना पड़ा है। आज उपलब्ध मनुस्मृति में अनेक स्थलों पर यह कहा गया है कि मनु ने अपनी स्मृति में जैसा कहा था वैसा ही हम इस स्मृति में लिख रहे हैं। ऐसे कथनों से तो यह सिद्ध होता है कि मूल स्मृति के स्थान पर कोई दूसरी स्मृति किसी अन्य व्यक्ति ने लिख दी है जिसमें बड़े ही स्वेच्छाचारी ढंग से कुछ बातें यथावत ले ली गयीं हैं, कुछ को रूपान्तरित कर दिया गया है और कुछ को नितान्त छोड़ दिया गया है। एक स्थान पर कहा गया है उन मनु ऋषि ने महाऋषि भृगु को जो बताया वही प्रसन्न होकर भृगु ने उन सब ऋषियों को 'सुनिये' कहकर बताया है।⁶ 'दूसरे स्थान पर लिखा है जैसे पूर्वकाल में प्रश्न पूछने पर मनु ने यह शास्त्र कहा था वही शास्त्र आज फिर मुझसे जान लीजिए।'⁷ इन श्लोकों से यही ज्ञात होता है कि मनु की बातें भृगु ने सुनी और जैसे ही सुनीं वैसे ही उन्होंने दूसरे उपस्थित ऋषियों को सुना दीं। जिस ग्रन्थ में इतना हस्तक्षेप और परिवर्तन किया गया है उसे हम मूल मनुस्मृति कैसे मान सकते हैं। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि मनुस्मृति में इतने बड़े हस्तक्षेप का क्या दुष्परिणाम हुआ है। वैदिक समाज व्यवस्था के मुख्य-मुख्य तत्व क्या थे यह समझने के बाद ही दुष्परिणाम को समझा जा सकता है। यह तत्व निम्न हैं:

1. वर्ण पद्धति – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र
2. आश्रम पद्धति ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास
3. संस्कार पद्धति – गर्भाधान से लेकर विवाह संस्कार तक 15 संस्कार और सोलहवां अन्त्येष्टि संस्कार

पंचमहायज्ञ पितृ यज्ञ, देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, अतिथि यज्ञ (नृयज्ञ) वलिवैष्य देवयज्ञ (भतू यज्ञ) कोई भी समाज ऐसा नहीं होता जहाँ मनुष्यों का वर्गीकरण न हो। आज के वैज्ञानिक युग में भी उद्योगी, व्यापारी, शिल्पी, कृषक, श्रमिक, शिक्षक, उपदेशक आदि वर्गों से कौन अनभिज्ञ होगा। वैदिक सामाजिक व्यवस्था में गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर चार वर्ग बनाये गये थे जिन्हें वर्ण कहते हैं। वर्गीकरण की यह पद्धति जन्म पर आधारित नहीं थी बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित थी और प्रत्येक व्यक्ति को एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इसीलिए इन श्रेणियों को वर्ण कहा जाता था वर्ण शब्द वरण करने की स्वतंत्रता निहित है।^{8, 9} इन वर्णों में परस्पर कोई उच्चता या निम्नता नहीं थी। शरीर के अवयवों के भांति यह समाज के अनिवार्य और समान रूप से उपयोगी अंग थे। मानव जीवन बहुत मूल्यवान होता है। मनु ने मनुष्य की कुल आयु को

चार भागों में विभक्त करके प्रत्येक भाग के उत्तम उपयोग की योजना प्रस्तुत की। ब्रह्मचर्य आश्रम में पदार्थ ज्ञान, शिल्प ज्ञान, पदार्थों के उपयोग का ज्ञान प्राप्त करना; ग्रहस्थ आश्रम में प्राप्त ज्ञान के आधार पर धन अर्जित करना, विवाह करना तथा सन्तान की उत्पत्ति एवं पालन-पोषण करना, वानप्रस्थ आश्रम में समाज की सेवा के लिए थोड़े समय के लिये घर छोड़ना, इसका अभ्यास होने पर घर का भार सन्तान को सौंपकर सदैव के लिए सेवाकार्य में संलग्न होना और शरीर की यात्रा पूरी करना यह योजना अत्यन्त सार्थक योजना है। अंतिम सांस तक हर व्यक्ति के जीवन के उपयोग के लिए इससे अच्छी योजना नहीं हो सकती। ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश के बाद सन्तानोत्पत्ति से लेकर मृत्युपर्यन्त किन-किन कर्तव्यों तथा दायित्वों को संभालना है, गर्भ से लेकर युवा होने तक इन्हीं संभावनाओं के कारण उसे भावी जीवन के योग्य बनने की चेष्टा की जाती है। शरीर के विकास के साथ आगामी आवश्यकता को ध्यान में रखकर मानवरूप जीव को मानवीय आदर्शों में ढालकर उसे श्रेष्ठ मनुष्य बनाने का प्रयत्न होता है। बिना इस प्रयास के तो वह पशुता के सांचे में ढल सकता है। यही प्रयास संस्कार कहलाते हैं जिनकी संख्या मनु ने सोलह बताया है। शरीर के विकास की नवीन स्थिति अथवा विनाश की स्थिति आयु का नया पड़ाव बनाती है। पड़ाव पर पहुंचने के लिए संस्कार मनुष्य को परोक्ष रूप से एक योग्यता प्रदान करता है। गर्भाधान, पुंसवान, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, यज्ञोपवीत, समावर्तन और विवाह आदि संस्कार इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किये जाते हैं। मानव जीवन के लिए इनकी उपयोगिता निःसंदिग्ध है। इसी प्रकार पंच महायज्ञों का मानव जीवन में अत्यंत केन्द्रीय महत्व है। मनुष्य परिवार में रहता है, समाज में रहता है और दूसरे प्राणियों के भी बीच में रहता है। मानवीय गुण के प्रदर्शन के लिए इससे अच्छी प्रयोगशाला कहां मिलेगी। परिवार के कल्याण में सहायक पितर श्रेणी के वयोवृद्ध लोगों की सेवा, आचार्य श्रेणी के लोगों की सेवा, उपदेश विद्वान जो कभी भी ग्रहस्थ के द्वार पर पहुंच सकते हैं। प्रकृति के उपकारी पदार्थ जैसे पेड़-पौधे, जल, सूर्य, चन्द्र, बादल, नदी, समुद्र, वायु, आकाश, जिन्हें सामूहिक रूप से देव कहा जाता है मनुष्य से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और मनुष्येतर प्राणी जो उसके आस-पास जीवन व्यतीत करते हैं और परोक्ष रूप से लाभ देते हैं, मित्रता की आशा रखते हैं इन सबके प्रति आदर, प्रेम और कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है ये सारे कर्म महायज्ञ की श्रेणी में आते हैं। ये महायज्ञ सुखपूर्ण ग्रहस्थ जीवन की कुंजी हैं। इस प्रकार वर्ण, आश्रम, संस्कार और पंचमहायज्ञ सुसंगठित सामाजिक जीवन के चार स्तम्भ हैं। इसका आश्रय पाकर ग्रहस्थ जीवन अभिशाप नहीं वरदान बन जाता है और सम्पूर्ण सामाजिक संगठन में प्राणवायु की भांति उपयोगी सिद्ध होता है। मूल मनुस्मृति में हस्ताक्षेप करके सामाजिक जीवन के इन स्वर्णिम सिद्धान्तों को नष्ट किया गया है। सर्वप्रथम हम वर्ण सिद्धान्त को देखें। दशम अध्याय में श्लोक एक से चार तक वर्ण सिद्धान्त बताया गया है। उसके बाद श्लोक पांच से श्लोक चौसठ तक वर्ण के स्थान पर वर्णसंकर से बने असंख्य जीवों का विवरण दिया गया है। प्रसंग से इन जातियों से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु वर्णसंकर का सिद्धान्त आविष्कृत करके यह दर्शाया गया है कि जातियां वर्णों से ही बनी हैं।^{10, 11, 12} विचारणीय यह है कि यदि जातियां वर्णों से बनी होतीं उन्हें भी वर्ण की भांति गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित होना चाहिए न कि जन्म पर। श्लोक 65 में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में पहुंचने की गतिशीलता प्रतिपादित है जबकि पश्चातवर्ती श्लोकों में चारों वर्णों से बाहर रहने वाले के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने पर कुछ भिन्न-भिन्न जातियां बन जाती हैं।¹³ जिनका वर्ण व्यवस्था के साथ कोई सामंजस्य नहीं रहता क्योंकि यहां भी गुण, कर्म, स्वभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में

अनुलोम प्रतिलोम विवाहों के कारण वर्णों में विकृतियाँ आईं जो जातियाँ बन गयीं किन्तु बाद में यह अनुलोम विलोम एवं क्रियालोम जातियों के मध्य चलने पर नई-नई जातियाँ अस्तित्व में आ गयीं। जब जातियाँ बन गयीं तो वर्ण का कर्म के साथ जो अटूट सम्बन्ध था वह भी टूट गया। अब जन्म से ब्राह्मण हैं तो ब्राह्मण ही माने जाएंगे चाहे कर्म क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का क्यों न करें।^{14, 15} यही नहीं जब गुण, कर्म, स्वभाव से निरपेक्ष रहते हुए जाति तय होने लगी तो जन्म पर आधारित ऊँच-नीच का विचार भी आ गया। अब ब्राह्मण के लिए विद्या सम्पन्न होना आवश्यक नहीं रहा। वह अपने जन्म के कारण ही पूजनीय बन गया।¹⁶ ऐसी ही उच्चता निम्नता अन्य जातियों में भी उत्पन्न हो गयी। आश्चर्य की बात है कि इस उथल-पुथल में भी ब्राह्मण वर्ण से जन्म पर आधारित केवल ब्राह्मण जाति बनी जबकि अन्य तीन वर्णों में वर्ण और जाति के मध्य ऐसी कोई पहचान शेष नहीं है और बनी हुई जातियों की संख्या हजारों में है समाज का यह बिखराव संसार में अन्यत्र किसी समाज में नहीं है। वर्ण पद्धति के नष्ट होने पर आश्रम पद्धति का नष्ट होना एक सामाजिक परिणति थी। जब ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए गुरुकुल में जाकर विद्या प्राप्त करने की आवश्यकता समाप्त हो गयी तब क्षत्रियत्व, वैश्यत्व या शूद्रत्व की प्राप्ति के लिए भी गुरुकुल की आवश्यकता नहीं रही। अब ये स्थितियाँ जन्म से ही अवधारित होने लगीं। वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का स्थान प्राप्त करने के लिए गुरुकुल में वेदों का अध्ययन अनिवार्य था और आचार्य के लिए आवश्यक था कि वे अपने यहाँ अध्ययन के लिए आये हुए ब्रह्मचारियों के गुणों को देखकर यह तय करें कि किसे किस वर्ग में रखा जाए और किसे किस वर्ग की शिक्षा दी जाये क्योंकि सभी ब्रह्मचारी सारे वेद नहीं पढ़ते थे। समस्त वेदों का अध्ययन केवल वही ब्रह्मचारी करता था जो ब्राह्मण वर्ण में रखा जाता था शेष ब्रह्मचारियों के लिए आवश्यकतानुसार तीन, दो अथवा एक वेद का ही अध्ययन पर्याप्त माना जाता था। सर्वोत्तम स्मरण शक्ति और सर्वोत्तम स्वभाव वाले ब्रह्मचारी चारों वेद पढ़ सकते थे क्योंकि उस युग में अध्ययन की परम्परा श्रुतिमूलक थी न कि पुस्तक मूलका आचार्य बोलते थे ब्रह्मचारी सुनते थे और जो सुनते थे उसी का अभ्यास करते थे। इस कसौटी पर सारे विद्यार्थी समान रूप से समर्थ सिद्ध नहीं होते थे। इसी कारण प्रत्येक वर्ण के लिए वेदाध्ययन का मानक पृथक-पृथक था। यद्यपि आज उपलब्ध मनुस्मृति में उपनयन संस्कार के नियम विस्तार के साथ नहीं मिलते तथापि यह नियम मिलता है कि ब्रह्मचर्यस् अर्थात् वेदज्ञान की इच्छा वाला ब्राह्मण पांच वर्ष की आयु में, छात्र बल प्राप्त करने का इच्छुक ब्रह्मचारी छः वर्ष की आयु और वैश्य बनने का इच्छुक ब्रह्मचारी 8 वर्ष की आयु में गुरुकुल में उपनयन संस्कार के लिए लाया जाये।¹⁷ किन्तु यह नियम अनुचित प्रतीत होता है। एक तो इस नियम में शूद्र वर्ण के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। जबकि शूद्र बनने का इच्छुक कोई ब्रह्मचारी होगा, इसमें भी सन्देह है। दूसरी इतनी कम आयु में कोई ब्रह्मचारी यह कैसे निश्चय कर सकता है कि किस वर्ण की शिक्षा लिए गुरुकुल में जाए। तीसरे यदि ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम वस्तु है तो स्वभावतः प्रत्येक ब्रह्मचारी इसी की प्राप्ति की इच्छा करेगा। इन प्रश्नों के उपस्थित हो जाने से यह निष्कर्ष निकलता है। कि ऐसा स्वेच्छाचारी नियम न तो श्रुति के अनुकूल है और न महर्षि मनु की योजना के अनुरूप है जिन्होंने श्रुति के विपरीत कुछ भी प्रतिपादित नहीं किया। वस्तुतः यह शोध का विशय है कि श्रुति तथा मूल मनस्मृति के अनुसार गुरुकुल में उपनयन और उपनयन के बाद वर्णवार छांटे गये उपयुक्त अभ्यर्थियों की क्या व्यवस्था थी। किन्तु समावर्तन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी के ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए मनुस्मृति में जो विधान है उससे यह संकेत मिलता है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी चारों वेद नहीं पढ़ता था बल्कि कोई चारों वेद, कोई तीन वेद, कोई दो वेद और कोई

ब्रह्मचारी एक ही वेद पढ़ता था और यह सम्भव है कि यह भेदमूलक अध्ययनक्रम वेद के अनुसार हों।¹⁸ किन्तु प्रश्न यह फिर भी अनुत्तरित रह जाता है कि इस अध्ययनक्रम का निर्णय गुरुकुल के आचार्य करते थे अथवा ब्रह्मचारी के माता-पिता करते थे अथवा ब्रह्मचारी स्वयं करता था। किन्तु जैसा पूर्व में भी कहा जा चुका है कि आज उपलब्ध मनुस्मृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी अविद्वान अर्थात् अशिक्षित भी हो सकता है तब शूद्र का तो कहना ही क्या। निःसन्देह यह व्यवस्था मनुस्मृति के अध्याय तीन के उपर्युक्त श्लोक संख्या दो का खण्डन करती है जिसमें ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश के लिए वेदाध्ययन एक अनिवार्य योग्यता है। इस अनिवार्य योग्यता के हटा दिये जाने से यह सहज कल्पना भी की जा सकती है कि वैदिक समाज व्यवस्था में एक अत्यधिक पतनकारी और क्रांतिकारी परिवर्तन आया जिसमें वेद का पढ़ना और पढ़ाना महत्वपूर्ण नहीं रह गया था। सम्भवतः मूल वैदिक पद्धति से विचलित रहने की यह पतनकारी प्रवृत्ति दीर्घकाल तक क्रमशः विकारित होते गये रूप में चली जिसे बाद में स्मृति ग्रन्थों में मान्यता दे दी गयी। आरम्भ में यह मान्यता तत्समय प्रचलित एकमात्र मनुस्मृति में दी गयी और कालान्तर में अन्य स्मृतियों ने इसे निसंकोच स्वीकार कर लिया। वैदिक संस्कृति में इस परिवर्तन का प्रभाव व्यापक और चतुर्दिक रहा होगा। आज जिन-जिन मान्यताओं के लिए मनुस्मृति को चिन्हित किया जाता है वे सब विकृतियाँ इस परिवर्तन के बाद ही प्रक्षेप विधि से जोड़ी गयी जिससे राजा उन्हें दण्ड के भय के साथ प्रजा से पालित करा सकें। यह भी स्मरणीय है कि यह वि.तियाँ मात्र ब्रह्मचर्य तथा ग्रहस्थ आश्रम तक सीमित नहीं रहीं बल्कि वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों में भी आयीं जैसा कि आज उपलब्ध मनुस्मृति में भी दिखाई पड़ता है। इन विकृतियों के आ जाने के बाद मनुस्मृति की वह प्रतिज्ञा पूर्णतया ध्वस्त हो गयी कि स्मृति सदैव श्रुति अर्थात् वेद का अनुसरण करती है।^{19, 20} अध्ययन की मौखिक परम्परा में सुदीर्घ काल में मंत्रों के उच्चारण के लिए जो सुकृढ़ व्यवस्था की गई थी और जिसे आज हम शिक्षा नामक वेदांग के रूप में जानते हैं उससे वेद संहिताओं में इन वि.तियों के अनुरूप मंत्रों का समावेश संभव नहीं था। यदि सम्भव होता तो आज वेद संहिताओं को भी मनुस्मृति की भांति घोर निन्दा का सामना करना पड़ता। परिणामस्वरूप वेद के उपदेशों से मेल न खाने वाले मनुस्मृति के असंख्य नियम बिल्कुल अलग-थलग पड़े हैं। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि मनुष्य के शारीरिक व सामाजिक विकास में संस्कारों का क्या स्थान है। स्मृति ग्रन्थों में कुल सोलह संस्कार विहित किये गये हैं। (1) गर्भाधान (2) पुंसवन (3) सीमन्तोन्नयन (4) जातिकर्म (5) नामकरण (6) निष्क्रमण (7) चूड़ाकरण (8) अन्नप्राशन (9) कर्णभेद (10) उपनयन (वेदराम्भ) (11) समावर्तन (12) विवाह (13) ग्रहस्थ (14) वानप्रस्थ (15) सन्यास (16) अन्त्योष्टि ये संस्कार चारों आश्रमों और चारों वर्णों के लिए किये गये हैं। जो मन्द बुद्धि तथा मूर्ख बालक है उनके उपनयनवाद पांच संस्कार अनपेक्षित हैं। शेष सभी संस्कार सब के लिए हैं। जब तक इन संस्कारों का पालन होता रहा समाज में सज्जनों की वृद्धि होती रही किन्तु जब वर्ण और आश्रम की पद्धतियों को उपेक्षित कर दिया गया तब इन संस्कारों को व्यापक रूप से परित्यक्त कर दिया गया और यदि कुछ पालन होता भी रहा तो वह केवल उपचारतः ही था, प्रदर्शन मात्र और उसका शारीरिक और सामाजिक विकास के साथ संबंध टूट चुका था। गृहाश्रम के अन्तर्गत पंच महायज्ञों का समावेश है। ग्रहस्थ मनुष्य के लिए जैसे प्रातः सांय संध्या करना आवश्यक था वैसे ही दैनिक अग्निहोत्र करना आवश्यक था यही देवयज्ञ था। माता-पिता, पितामह, मातामही, प्रपितामह, प्रप्रपितामही तथा अन्य बड़ों जैसे ज्येष्ठ भ्राता, भाभी आदि की देख-रेख करना, उनके भोजन वस्त्रों की चिन्ता करना और यथायोग्य सम्मान प्रतिदिन देना गृहस्थी का कर्तव्य था। यही पितृयज्ञ कहलाता था। वेद का

अध्ययन प्रतिदिन करना भी उनका दैनिक कर्तव्य था इसे ऋषियज्ञ कहा जाता था। उपदेश के लिए बिना पूर्वसूचना या आमन्त्रण के घर पर आये हुए विद्वान का सत्कार अतिथियज्ञ था। स्वयं आहार लेने से पूर्व किसी न किसी मनुष्येत्तर प्राणी को भोजन देना बलिवैश्य देव यज्ञ कहलाता था जिसे प्रतिदिन करना प्रत्येक गृहाश्रमी का धर्म था। जब वर्णाश्रम पद्धति पर चलना समाप्त हो गया इन पंचमहायज्ञों का करना भी बन्द हो गया। जिन महायज्ञों से सामाजिक जीवन अत्यधिक सुगठित तथा सुखसमृद्ध रहता था उनके बन्द हो जाने से परिवार और समाज की सुन्दर योजना मिट्ट में मिल गयी। वेद विद्या से हीन तथा धूर्तचालाक ब्राह्मणों ने अपने हित के लिए मृत पितरों के श्राद्ध की परम्परा शुरू कर दी जो पूर्णतया वेदवाह्य थी। मृत पितरों की मूर्खतापूर्ण परम्परा के प्रचलित हो जाने पर जीवित माता-पिता आदि का सम्मान और इनके भोजन वस्त्र की चिन्ता लुप्त हो गयी। मान्यता के लिए इस दूषित परम्परा को आज उपलब्ध मनुस्मृति में महत्वपूर्ण स्थान दे दिया गया।^{21, 22} जीवित माता-पिता आदि पितरों के लिए सन्तान के द्वारा किया गया भोजन वस्त्र आदि का सत्कार उन्हीं को मिलेगा और उससे उन्हीं को सुख मिलेगा जबकि मृतक माता-पिता पितरों को दिया गया भोजन वस्त्र आदि का सारा सत्कार स्वयं ब्राह्मण को मिलेगा क्योंकि वही दावा करता है कि श्राद्ध के नाम पर जो उसको सौंपा जाएगा वह आत्मा को भोज के लिए पहुंच जायेगा। वेद विद्या के लोप के कारण यह अन्धविश्वास लोगों के मन में इतना गहरा बैठ गया कि आज तक यह दूषित परम्परा चली आ रही है। फलस्वरूप समाज व्यवस्था को कृद्धता प्रदान करने के लिए जीवित माता-पिता आदि अग्रेजों को आदान-प्रदान करने का जो धर्म मनु ने वेदों के अनुरूप प्रतिपादित किया था उसका शनैः शनैः उच्छेदन हो गया और आज स्थिति यह है कि वृद्धावस्था में आ जाने वाले माता-पिता का पालन पोषण परिवारों में दुष्कर हो गया है। जो पितृ यज्ञ हर गृहाश्रमी को प्रतिदिन करना चाहिए जिससे उसके माता-पिता आदि सुखी रहें उससे मृतक श्राद्ध बनाकर मास-मास अथवा वर्ष प्रतिवर्ष करने की व्यवस्था कर दी जो मृतक के लिए पर्याप्त बता दी गयी। तृतीय अध्याय के श्लोक 117 में पांचों महायज्ञों को करने के बाद गृहाश्रमी भोजन करें ऐसा नियम है उसी अध्याय के श्लोक 122 में यह नियम प्रक्षिप्त कर दिया गया कि हर माह अमावस्या के दिन मृतक श्राद्ध किया जाए। इस प्रकार समाज व्यवस्था के लिए अतिमहत्वपूर्ण महायज्ञों को ध्वस्त कर दिया गया। आज प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी यह अनुभव करता है कि हमारे सामाजिक जीवन में नैतिकता की बहुत ही कमी आ गयी है। नैतिकता कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो सीधे-सीधे हर व्यक्ति को दिया जा सकता है। वह ऐसा पदार्थ है जो सभी व्यवहारों में ओत-प्रोत होकर परोक्ष ढंग से प्राप्त हो सकता है। मनु ने गृहाश्रमी के लिए जिन पांच महायज्ञों का विधान किया था उनमें नैतिकता ओत-प्रोत थी जिसके कारण मनुष्य के व्यवहार अपने कुटुम्ब, समाज तथा राज्य में भी प्रायः नैतिक बने रहते थे। मनुस्मृति अपने शुद्ध रूप में वास्तव में एक अर्थशास्त्र है जिसके अनुसार व्यवहार होने पर अधर्म का पनपना कठिन हो जाता है। यह अधर्म ही अनैतिकता है। किन्तु मनुस्मृति ऐसा धर्म ग्रन्थ नहीं है जो किसी सम्प्रदाय या पन्थ को जन्म देने वाला हो। वह केवल सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी कर्तव्यों का विधान करने वाला ग्रन्थ है जिसकी आवश्यकता सदैव रहती है। अतः यह विचारणीय हो सकता है कि मनु ने जो पांच महायज्ञ विहित किये थे वे आज भी प्रासांगिक हैं और यदि है तो आज के पंथनिरपेक्ष राज्य को अपने संविधान को अथवा असंख्यात विधानों में उन महायज्ञों के सार को समाविष्ट करना चाहिए अथवा नहीं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि मनुस्मृति में परवर्ती प्रक्षेपों द्वारा जो दोष पतित एवं स्वार्थी तत्वों ने उत्पन्न कर दिये हैं राज्य उनको दूर करके मनुस्मृति के मूल स्वरूप को

पुनः स्थापित करें जिससे उत्तम मूल्यों की स्थापना में इस श्रेष्ठ पुस्तक का भी योगदान हो सके। इन्हीं दोषों के कारण आज मनुवादी विचारधारा मानवादी विचार धारा के विपरीत मानी जाती है जबकि दोनों अभिन्न हैं। क्योंकि मनु और मानव पर्यायवाची शब्द हैं न कि विलोम शब्द।

संदर्भ

1. मनुस्मृति 2.6
2. मनुस्मृति 2.3
3. मनुर्वे यत्किंचावदत् तद् भैशजम्—ताडव ब्राह्मण 23.16.7 तैत्तिरीय संहिता 2.2.10.2;3.1.9.14;3.1.9.30
4. अविशेषेण पुत्राणं दादी भवति धर्मतः। मिथुनानां विसर्गादौ मनु स्वांयभुवोव्रदीत।। निरुक्त 3.4
5. वेदार्थोपविद्धत्वात् प्रधात्वं हि मनोः स्मृतम्। मन्वर्थविपरीता या स्मृति सा न शस्यते। बृहस्पति स्मृति 13
6. ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः। तानव्रवीकृषीन्सर्वान् प्रीतात्मा श्रूयतामिति।। मनु. 1.60
7. यचेदमुक्तवास्वं पुरा पृष्ठो मनुर्मया। तथैदं यूयमप्यद्य मनसकाशन्निवोधत।। मनु. 1.119
8. ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शुद्रो नास्ति तु पंचमः।। मनु. 10.4
9. शुद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चौति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।। मनु. 10.65
10. सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु। आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते। मनु 10.5
11. अन्नतरासु जातानां विधेश सनातनः। द्वेधकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम्।। मनु. 10.7 12
12. ब्राह्मणादैश्यकन्यायामंबष्ठो नाम जायते। निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते।। मनु. 10.8
13. जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः। जातो प्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः।। मनु 10.67
14. आजोवंस्तु यर्वोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा। जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः। मनु.10.81
15. वैश्यवश्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपिवा। हिंसा प्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत्। मनु. 10-83
16. अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो देवतं महत्। प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निदैवतं महत्।। मनु. 9.317
17. ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्ये विप्रस्य पंचमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यैहार्थिनो षष्ठे। मनु. 2.37
18. वेदानधीत्य वेदो वा वेदं वा पियथाक्रमम्। अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।। मनु. 3.2
19. अर्थकामेश्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।। मनु. 2.13
20. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति ते सर्वार्थश्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ।। मनु. 2.10
21. देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन् गृह्याश्च देवताः। पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत्।। मनु 3.117
22. पितृयज्ञं तु नित्यं विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्रिमान्। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम्।। मनु. 3.722